तित्थयर

पंचदश वर्ष : दिसम्बर १९९१ : अष्टम अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक ८

दिसम्बर १९९१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

जैन दर्शन में काय विचार :

दार्शनिक विवेचन २२७

दासानुदास पाहिल श्रेष्ठी २३१

ध्यान : चित्त की एकाग्रता

की कसौटी के लिए २३६

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र २४२

संकलन २५३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २५४

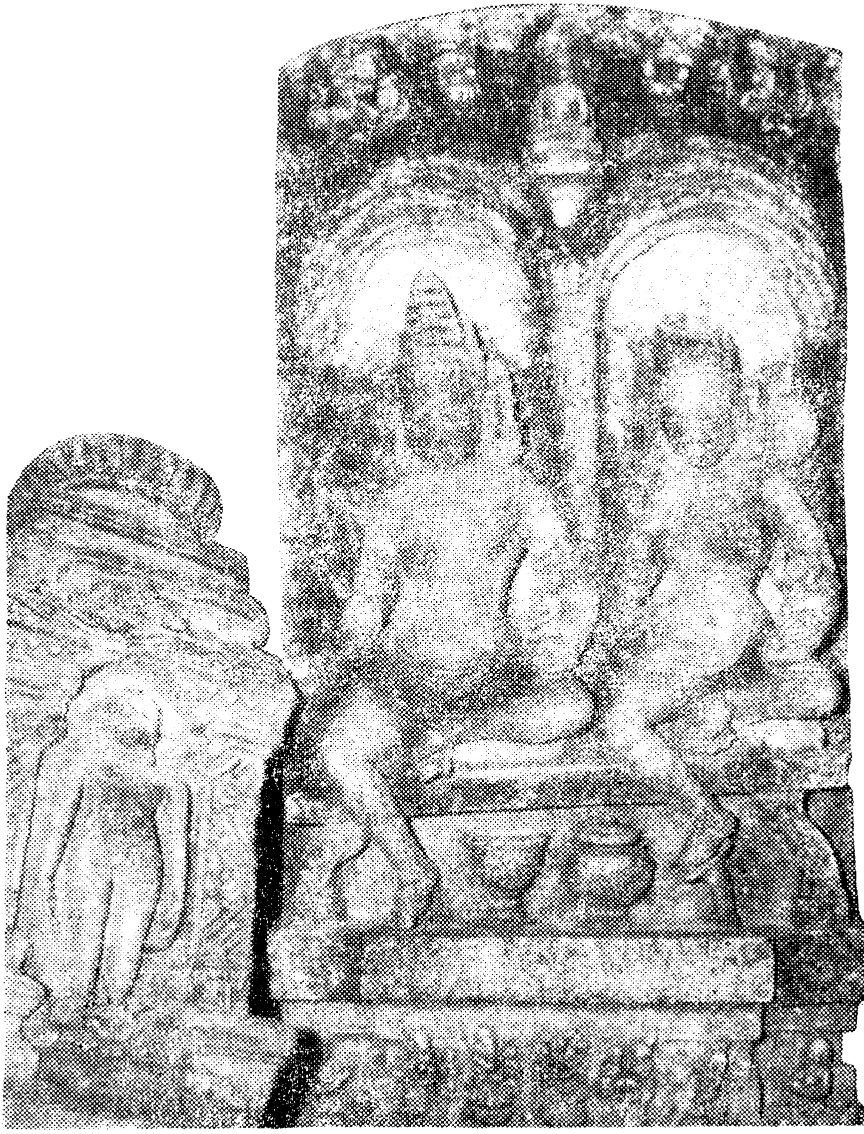

तीर्थंकर के माता-पिता या यक्षयक्षिणी, पाकविड़रा

जैन दर्शन में काय विचार : दार्शनिक विवेचन

डा० मुकुलराज मेहता

जैन दर्शन में द्रव्य के वर्गीकरण का एक आधार अस्तिकाय और अनस्तिकाय की अवधारणा भी है। षट् द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव, ये पाँच अस्तिकाय एवं काल को अनस्तिकाय के अन्तर्गत रखा गया है। काल का अस्तित्व तो है किन्तु उसमें कायत्व नहीं है, अतः उसे अस्तिकाय के वर्ग में नहीं रखा जा सकता। प्रश्न उठता है कि अस्तिकाय की अवधारणा का तात्पर्य क्या है? व्युत्पत्ति की दृष्टि से अस्तिकाय दो शब्दों के मेल अस्ति + काय से बना है। 'अस्ति' का अर्थ है अस्तित्व व 'काय' का अर्थ है 'शरीर', अर्थात् जो शरीर रूप से अस्तित्ववान है वह अस्तिकाय है। 'काय' शब्द भौतिक शरीर के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है, क्योंकि पंचास्तिकायों में पुद्गल को छोड़कर शेष चार अमूर्त हैं। 'कायत्व' की व्याख्या जैन दर्शन में सावयवत्व, प्रदेशी व विस्तार युक्त आदि रूपों (अर्थों) में की गई है।

'कायत्वमाख्यं सावयवत्वम्' अर्थात् सावयवत्व से है (पंचास्तिकाय की टीका)। 'अवयवी' का अर्थ है अंगों से युक्त। प्रश्न उठता है कि धर्म, अधर्म व आकाश, इन अखण्ड द्रव्यों में अवयव की कल्पना कहाँ तक युक्ति संगत है? पुनः परमाणु, जो कि पुद्गल का ही एक रूप है, अविभाज्य व निरवयवी है, तो क्या अस्तिकाय नहीं है? इसका समाधन करते हुए जैन दार्शनिक का उत्तर है कि धर्म, अधर्म व आकाश में सावयवत्व की कल्पना क्षेत्र की दृष्टि से वैचारिक स्तर पर है, क्योंकि क्षेत्र की दृष्टि से ये लोकव्यापी हैं। परमाणु भी स्कंध बन कर सावयवत्व धारण करते हैं, अतः उनमें कायत्व का सद्भाव मानना चाहिए। अतः कालाणुओं के अतिरिक्त अन्य सर्वद्रव्यों में कायत्वनामा सावयवपना निश्चित करना चाहिए "ततः कालाणुभ्योऽन्य सर्वेषां कायत्वाख्यं सावयवत्वमवसेयम्" (पंचास्तिकाय)। वर्गीकरण का एक अन्य आधार यह भी है कि बहुप्रदेशीय द्रव्य अस्तिकाय व एक प्रदेशीय द्रव्य अनस्तिकाय है। 'नियमसार' में भी उल्लेख है 'णिद्दिट्ठा जिणसमते कायाहु बहु पदेसत्तं' अर्थात् जिन-समयमें भी कहा गया है कि जो बहुप्रदेशीपना है वही कायत्व है। पुनः प्रश्न उठता है कि धर्म, अधर्म व आकाश स्वद्रव्यापेक्षा से अखण्ड होने से एक प्रदेशी है व परमाणु पुद्गल भी एक प्रदेशी है। इसका

उत्तर संभवतः यही होगा कि धर्म, अधर्म व आकाश में बहुप्रदेशत्व द्रव्यापेक्षा से नहीं वरन् क्षेत्रापेक्षा से है। पुद्गल का बहुप्रदेशीपना भी परमाणु की अपेक्षा से न होकर स्कंध की अपेक्षा से है। द्रव्य संग्रह में भी कहा गया है—

यावन्मात्रं आकाशं अविभागि पुद्गलाण्ववष्टकम्।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थान दानार्हम्॥

प्रो० जी० आर० जैन ने भी प्रदेश को परिभाषित करते हुए लिखा है 'Pradesa is a unit of space occupied by one indivisible atom of matter.' जो द्रव्य जितने क्षेत्र का अवगाहन करता है, वही विस्तार (extension), प्रदेशप्रचयत्व या कायत्व है। विस्तार या प्रचय के दो प्रकार—(१) ऊर्ध्व या एकरेखीय एवं (२) तिर्यक या बहुआयामी माने गए हैं। जैन दार्शनिकों ने केवल उन्हीं द्रव्यों को अस्तिकाय की श्रेणी में रखा है, जिनका तिर्यक या बहुआयामी विस्तार है। काल में केवल ऊर्ध्व आयाम है, अतः उसे अस्तिकाय नहीं माना गया है। डा० सागरमल जैन के शब्दों में 'जिन द्रव्यों में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के रूप में त्रिआयामी विस्तार है, वे ही अस्तिकाय हैं।

प्रश्न उठता है कि काल लोकव्यापी होने के बावजूद भी अस्तिकाय क्यों नहीं है? इसका उचित समाधान यह हो सकता है कि प्रत्येक कालाणु अपने आप में एक स्वतन्त्र द्रव्य है। स्निग्ध व रूक्ष गुण के अभाव के कारण उनमें बंध नहीं होता, अर्थात् स्कंध नहीं बनते व स्कंध के अभाव में प्रदेशप्रचयत्व असंभव है। देकार्त पुद्गल (Matter) का गुण विस्तार मानता है, जब कि जैन दर्शन में आत्मा, धर्म, अधर्म और आकाश अमूर्त द्रव्यों में विस्तार स्वीकृत है। धर्म व अधर्म तो महास्कंध के रूप में सम्पूर्ण लोकाकाश के एक सीमित असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में विस्तृत हैं। आकाश भी स्वतः ही अनन्त (लोक व अलोक) में विस्तृत है। देकार्त आत्मा में विस्तार नहीं मानता किन्तु जैन दर्शन के अनुसार आत्मा जिस शरीर को अपना आवास बनाता है, चेतन लक्षण उसमें समग्रतः व्याप्त हो जाता है। निष्कर्षतः विस्तार या प्रसार ही कायत्व है, क्योंकि विस्तार की उपस्थिति में ही प्रदेश प्रचयत्व या सावयवता की सिद्धि होती है। अतः जिन द्रव्यों में विस्तार का लक्षण है, वे ही अस्तिकाय हैं।

अब प्रश्न उठता है कि जिन द्रव्यों को अस्तिकाय माना गया है उनमें प्रसार (कायत्व) न मानने से क्या समस्या उत्पन्न होगी? इनके बारे में क्रमशः विचार किया जा सकता है।

(१) आकाश—आकश को अप्रसारित मानने से उसके मूल कार्य की ही असिद्धि होगी। 'द्रव्य संग्रह' में कहा गया है "अवगास दाण जोग्गं जीवादीणं बिषाण आयास" अर्थात् जो जीवादि द्रव्यों को स्थान देता है, वही आकाश है। अतः विस्तार तो आकाश का स्वरूप लक्षण है, जिसके अभाव में उसकी सत्ता ही असंभव है। अब प्रश्न उठता है कि आकाश का विस्तार किसमें है? इसका उत्तर यही होगा कि आकाश स्वतः विस्तीर्ण है। उसके विस्तार के लिए यदि हम किसी अन्य आकाश की कल्पना करेंगे तो अनन्तता के दुश्चक्र में फँस जायेंगे।

(२) धर्म—'नियमसार' में कहा है 'गमण णिमितं धम्मं' अर्थात् धर्म गति का माध्यम है। गति विस्तीर्ण तत्व में ही संभव है। अतः धर्म को उतने क्षेत्र में विस्तीर्ण होना चाहिए, जितने क्षेत्र में गति सम्भव है। यदि गति का माध्यम (धर्म) स्वयं विस्तीर्ण नहीं होगा तो गति सम्भव ही नहीं होगी। जैसे जल का प्रसार जितने क्षेत्र में विस्तीर्ण होगा, उतने में ही मछली की गति संभव होगी, वैसे ही धर्म का प्रसार जितने क्षेत्र में होगा, उतने क्षेत्र में ही पुद्गल व जीवों की गति संभव होगी। अतः धर्म द्रव्य विस्तारयुक्त अस्तिकाय है।

(३) अधर्म—अधर्म स्थिति का माध्यम है "अधम्मंठिदि जीव पुग्गलाणं च" (नियमसार), अधर्म के कारण ही परमाणु स्कंध की रचना करके स्कंध रूप में संगठित रहते हैं। स्कंध ही आत्म प्रदेशों को शरीर तक सीमित रखता है। विश्व की एक व्यवस्थित, रचना बनाए रखने के लिए अधर्म द्रव्य का प्रसार लोकव्यापी मानना आवश्यक है। जहाँ-जहाँ गति का माध्यम (धर्म) है, वहाँ-वहाँ उसका विरोधी, स्थिति का माध्यम (अधर्म) भी होना चाहिए, अन्यथा गति का नियंत्रण संभव नहीं होगा। अतः गति के संतुलन को व इस रूप में विश्व के संतुलन को बनाए रखने के लिए अधर्म को विस्तारयुक्त लोकव्यापी मानना आवश्यक है।

(४) पुद्गल—पुद्गल द्रव्य में विस्तार है, यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है, क्योंकि जिन पुद्गल स्कंधों का हमें प्रत्यक्ष होता है, वे सब विस्तारयुक्त हैं। स्कंध की रचना ही परमाणुओं के तिर्यक प्रचय से होती है, अतः वे काय रूप हैं ही। यदि पुद्गल को अस्तिकाय नहीं माना जाएगा, तो एक मूर्त विश्व की संभावना ही निरस्त हो जाएगी।

(५) जीव—जीव में विस्तार को अस्वीकार करने से यह कठिनाई होगी

कि जीव अपने स्वलक्षण चेतन्य गुण से अपने शरीर को व्याप्त नहीं कर सकेगा। शरीर में चेतन्यता का संकोच व विस्तार देखा जा सकता है। अतः उस चेतन्य गुण के धारक आत्मा को विस्तारयुक्त या अस्तिकाय मानना आवश्यक है। कालाणुओं में स्निग्ध व रूक्ष गुणों के अभाव हैं अतः उनका स्कंध या संघात नहीं बनता है। पुनः काल के वर्तना लक्षण की सिद्धि वर्तमान में ही है जो अत्यन्त सूक्ष्म है। अतः काल में विस्तार या प्रचय नहीं माना जा सकता, परिणामतः वह अस्तिकाय नहीं है।

सभी अस्तिकाय द्रव्यों के विस्तार क्षेत्र में भिन्नताएँ हैं। जहाँ आकाश का विस्तार क्षेत्र लोक-अलोक दोनों है, वहाँ धर्म-अधर्म लोक तक ही सीमित हैं। पुद्गल पिण्डों का विस्तार क्षेत्र उनके द्वारा गृहीत शरीर के आकार पर निर्भर करता है। भगवतीसूत्र में बताया गया है धर्म व अधर्म के प्रदेश अन्य द्रव्यों की अपेक्षा कम है, वे असंख्य प्रदेशी लोकाकाश तक ही सीमित है। उनकी अपेक्षा जीव के प्रदेश अनन्त गुणा अधिक हैं, क्योंकि जहाँ एक-एक धर्म व अधर्म है वहाँ जीव अनन्त हैं। पुनः प्रत्येक जीव के असंख्य प्रदेश हैं। जीव की अपेक्षा पुद्गल के अनन्त गुणा प्रदेश हैं क्योंकि प्रत्येक जीव के साथ अनन्त पुद्गल संयोजित हैं। इन सभी की अपेक्षा आकाश के प्रदेशों की संख्या सर्वाधिक मानी गई है, क्योंकि धर्म, अधर्म, पुद्गल व जीव, ये सभी सीमित लोक में ही स्थित है, जब कि आकाश अनन्त अलोक में भी स्थित है।

दासानुदास पाहिल्ल श्रेष्ठी

कुन्दनलाल जैन

अभी श्रुतपंचमी के अवसर पर १५-१६ जून ६१ को खजुराहो में होने वाली कुन्दकुन्द द्वि-सहस्राब्दी संगोष्ठी में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां जिननाथ (आदिनाथ) मन्दिर में उसके निर्माता उदार-हृदय पाहिल्ल श्रेष्ठी का (६५४ ई०) महती विनम्रता से भरा शिलालेख पढ़ने को मिला तो हृदय भर आया। इस लेख में श्रेष्ठी महोदय ने स्वयं को 'दासानुदास' विशेषण से संबोधित किया है। उनकी इस महती विनम्रता के शब्द ने उन पर कुछ शोध-खोज की प्रेरणा प्रदान की। फलस्वरूप यह प्रस्तुत लेख लिखा जा रहा है।

पाहिल्ल श्रेष्ठी संबंधी प्रस्तुत शिलालेख जिननाथ मन्दिर के प्रवेश द्वार की बाईं चौखट में गहरी छैनी से उकेरा गया है जो आज ११०० सौ वर्ष बाद भी स्पष्ट पढ़ने में आता है, मूल पाठ निम्न प्रकार है :

ॐ सं० १०११ समये—निजकुलधवलोयं दिव्यमूर्त्तिः स्व (सु) सी (शी) लः,

स (श) म दम गुण युक्तः सर्व्वसत्वा (स्वा) नुकम्पी।
स्व (सु) जन जनित तोषो धां (धं) गराजेन मान्यः,
प्रणमति जिननाथोयं (थं) भव्यं पाहिल्ल (ल्ल) नामा ॥

१. पाहिलवाटिका २. चन्द्रवाटिका ३. लघु चन्द्रवाटिका ४. सं (शं)-करवाटिका ५. पंचाईतलवाटिका ६. आम्रवाटिका ७. धं (धों) ग वाडी। पाहिलवंसे (शे) तु क्षये क्षीणे अपरवंसो (शो) यः को पि तिष्ठति तस्यदासस्य दासोयं मम दतिस्तु पालयेत्। महाराज गुरु (श्री) वासवचन्द्र। वैसाश (ष-ख) सुदिसोमदिने।

उपर्युक्त शिलालेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भव्य पाहिल्ल श्रेष्ठी ने खर्जुरवाहक (खजुराहो) में तत्कालीन द्वितीय चन्देल नरेश धांगराज, जो महाराज यशोवर्मन प्रथम के बाद चंदेला राज्य के उत्तराधिकारी बने, के समय में प्रस्तुत जिननाथ मंदिर का निर्माण कराया था तथा इसकी सुरक्षा पूजा-पाठ, आरती आदि पुनित कार्यों के लिए उपर्युक्त सात वाटिकाएं—बगीचे दान में लगा दिए थे जिससे जिननाथ मंदिर के सुसंचालन में किसी तरह की बाधा न आवे, साथ ही विनम्र निवेदन किया था कि मेरे तथा मेरे वंश के नष्ट हो जाने के बाद जो भी भव्य पुरुष इस मन्दिर की देखभाल तथा साथ

संभार कर इसकी सुरक्षा करता रहेगा उसका यह पाहिल्ल श्रेष्ठी युगोंयुगों तक दासों का दास बना रहेगा। कितनी उदार और विनम्र भावना है पाहिल्ल श्रेष्ठी की, कि स्वनिर्मित जिन मंदिर की सुरक्षा करने वालों के प्रति वे कितनी अधिक कृतज्ञता और विनम्रता प्रकट करते हैं। इसी शिलालेख के साथ ३४ के जोड़ वाला यंत्र भी उत्कीर्ण है। यह नौ घरों वाला है जो संभवतः नवकार मंत्र का प्रतीक हो, इसमें अंकित अंकों को किसी भी तरफ से जोड़ो, सबका जोड़ ३४ ही आवेगा। यह ३४ की संभावना अरहंत के ३४ अतिशयों की द्योतक हो।

जनरल कनिंघम ने इस शिला लेख में अंकित संवत् १०११ को युक्ति पूर्वक सिद्धकर सं० ११११ पढ़ने का प्रयास किया है पर इससे चन्देल वंशावली पर अन्तर आता है अतः मूल संवत १०११ ही उपयुक्त ठहरता है। धन-कुबेर पाहिल्ल श्रेष्ठी गृहपति वंश (गहोई) में उत्पन्न हुए थे। बुन्देल खण्ड के धन कुबेर पाडासाह भी गृहपति वंशान्वयी थे। पाहिल्ल श्रेष्ठी के पिता का नाम देदू था और पुत्र का नाम साहु साल्हे था। साहु साल्हे के पुत्र महागण, महीचंद्र, श्रीचन्द्र, जितचन्द्र और उदयचन्द्र आदि थे। श्रेष्ठी पाहिल्ल के पुत्र साहु साल्हे ने माघ सुदी ५ सं० ११८ को खजुराहो में भगवान संभवनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। इस प्रतिमा के मूर्तिकार का नाम रामदेव था। यह प्रतिमा श्यामवर्ण पाषाण की विशाल मनोज्ञ मूर्ति है। इस मूर्ति का वजन लगभग चार-पांच क्विंटल से अधिक होगा। इस मूर्ति के पाद पीठ पर अंकित मूर्ति लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार है :

ॐ संवत् १२१५ माघ सुदी ५ श्री मन्मदनवर्म्म देव प्रवर्द्धमान विजयराज्ये गृहपतिवंसे (शे) श्रेष्ठि देदू तत्पुत्र पाहिल्लः। पाहिल्लांगरुह साधु साल्हे (ते) नेदं (यं) प्रतिमा कारितेति। तत्पुत्राः महागण, महीचन्द्र सिरि (श्री) चन्द्र, जितचन्द्र, उदयचन्द्र प्रभृति। संभवनाथं प्रणमति नित्यं। मंग(लं) महाश्री (:) रूपकार रामदेवः।

इस मूर्ति लेख में वर्णित पाहिल्ल श्रेष्ठी तथा जिननाथ मन्दिर के निर्माणकर्त्ता पाहिल्ल श्रेष्ठी में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर दिखाई देता है इससे यह अनुमान किया जाता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना के समय पाहिल्ल श्रेष्ठी दिवंगत हो गये होंगे उनके पुत्र साहू साल्हे पौत्रों ने अपने पिता व दादाकी पुण्य स्मृति को चिरकाल तक जीवित रखने के लिए उनका

नाम इस मूर्ति के पाद पीठ में अंकित करा दिया होगा? इस समय चन्देल वंश उन्नति और समृद्धि के चरम शिखर पर था, इनमें से कई राजा तो जैन धर्म के प्रति बड़े उदार और अनुरागी थे। उनके शासन काल में जैन धर्म को खूब फलने-फूलने का अवसर मिला।

यहां हम उन चन्देल राजाओं का संक्षिप्त-सा विवरण दे देना अनुचित नहीं समझते जिनके राज्य में जैन धर्म को प्रश्रय और संरक्षण मिला जिससे जैन धर्म के साथ-साथ जैन शिल्प, जैन साहित्य एवं जैनकला पल्लवित एवं पुष्पित हुई और उन्नति एवं अभिवृद्धि के चरम शिखर पर पहुँची। बुन्देल खण्ड में चन्देलवंश की नींव सर्वप्रथम नन्नुक चन्देला ने (नवमीं सदी) स्थापित की जिसने कल्याणकटकपुर (कालिंजर) में किले का निर्माण कराया था। यह नन्नुक चंदेला गोल्ल देश का निवासी था। जब गोल्लदेशाधिप पड़ोसी राज्य से पराजित हो गोल्लाचार्य बन गये तो नन्नुक गोल्लदेश से भागकर कालिंजर का प्रथम चन्देल राजा बना। इसने गोल्लदेश निवासी गोलालारों, गोलापूर्वों एवं गोल्लशृंगों को आश्रय दिया और अपने राज्य में बसाया। ये लोग जैन धर्मानुयायी थे। इनके लिए गोल्लपुर विशेष रूप से बसाया गया जो महोबा के पास था—ऐसा लखनऊ म्यूजियम में स्थित मूर्तिलेखों से ज्ञात होता है।

इसी चन्देलवंश में यशोवर्मन् प्रथम नामक प्रतापी राजा हुआ, जैसा कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है। यह बड़ा न्यायप्रिय राजा था अतः इसने अपने महल के मुख्य द्वार पर न्यायघंटिका लगवा रखी थी जिसे कोई भी दुखियारा बजाकर न्याय की मांग कर सकता था, जैसाकि उपर्युक्त ग्रन्थ के पृ १०७-८ पर अंकित है। "कल्याण कटके पूरे यशोवर्मनृपति स्तेन धवल गृह द्वारे न्यायघण्टा बद्धा।" लगता है इस घटना से प्रभावित हो आगे चलकर बादशाह जहाँगीर ने भी इसी प्रथा को कायम रखा हो। इसी यशोवर्मन् प्रथम के पुत्र धंगराज ने चन्देल राज्य की सीमाओं को बढ़ाकर अपनी कीर्ति विस्तृत और चिरस्थायी बनाई थी। 'पुरातन प्रबंध संग्रह' ग्रन्थ में इसकी प्रशंसा में बहुत विस्तार से लिखा है। इसी के राज्य में हमारे इस लेख के नायक पाहिल्ल श्रेष्ठी ने खजुराहो में जिननाथ मन्दिर बनवाया था तथा इसी राजा के नाम पर विकसित और निर्मित धंग वाटिका अन्य छः वाटिकाओं के साथ स्वनिर्मित जिननाथ मन्दिर के लिए दान में दी थी।

धंगराज के बाद चंदेल वंश का उत्तराधिकारी उसका पुत्र गंडराज और

फिर उसका पुत्र विद्याधर हुआ। विद्याधर का उल्लेख दूबकुण्ड (ग्वालियर) के विशाल शिलालेख में जो एक जैन मन्दिर के निर्माण के समय महाराज विक्रमसिंह के राज्यकाल में लिखा गया था। विद्याधर के बाद इस राज्य का उत्तराधिकारी विजयपाल हुआ और उसके बाद कीर्तिवर्मा हुआ जिसने सं० ११५४ के लगभग लुअच्छ गिरि नाम से प्रसिद्धि प्राप्त देवगढ़ का नाम कीर्ति नगर रखा था और यहाँ जैन शिल्प का विकास कराकर इसे जैन शिल्प का प्रसिद्ध केन्द्र बना दिया था।

कीर्ति वर्मा की एक पीढ़ी के बाद चन्देल वंश का उत्तराधिकारी मदन वर्मन हुआ जो बड़ा प्रतापी और उत्कृष्ट शासक था। इसके राज्यकाल में जैन धर्म की बड़ी प्रगति हुई। पपौरा में स्थित मूर्ति लेखों से इसकी जैन धर्म प्रियता का आभास मिलता है। खजुराहो स्थित मूर्तियों में भी इस राजा का उल्लेख है जो श्रेष्ठी पणिधर ने निर्मित कराईं थीं। मूर्ति लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार है :

ॐ गृहपत्यन्वये श्रेष्ठि पणिधरस्तस्य सुत श्रेष्ठी ति (त्रि) विक्रम तथा आल्हण, लक्ष्मीधर। संवत् १२०५ माघवदि ५।

कोक्कल के शिलालेख में भी इन (मदनवर्मदेवस्य प्रवर्द्धमान विजयराज्य)— का उल्लेख मिलता है। महोबा से प्राप्त मूर्तियों में भी महाराज मदन वर्मदेव का नामोल्लेख मिलता है। मदन वर्मदेव के बाद उसका पुत्र यशोवर्म द्वितीय हुआ जो अपने पिता के सामने ही दिवंगत हो गया था। अतः मदन वर्मदेव के पश्चात् चन्देल वंश का उत्तराधिकारी परमर्दि देव हुआ। मदन वर्मदेव के समय में ही अहार, जिसे मदनेश सागरपुर कहा जाता था, में प्रसिद्ध ऐतिहासिक भ० शान्तिनाथ की प्रतिमा पाडासाह के वंशजों ने प्रतिष्ठित कराई थी। मदनवर्मदेव ने अपना राज्य मालवा तक फैला दिया था। इसलिए परमर्दिदेव 'दशार्णाधिपति' की उपाधि से सुशोभित हैं।

महोवा से प्राप्त सं० १२२४ की जैनमूर्ति में परमर्दिदेव को 'प्रवर्द्धमान कल्याण विजय राज्ये' से सम्बोधित किया गया है। अहार से प्राप्त एक जैनमूर्ति सं० १२३७ में भी राजा परमर्दिदेव का उल्लेख है। परमर्दिदेव के बाद चंदेलवंश का उत्तराधिकारी त्रैलोक्य वर्मन हुआ जिसने छत्तीस वर्ष राज्य किया था। पर जैनधर्म संबंधी किसी कार्य का उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता है। त्रैलोक्य वर्मन के बाद चंदेलवंश का अन्तिम राजा वीरवर्मदेव हुआ जिसका उल्लेख अजयगढ़ (पन्ना) से प्राप्त भ० शान्तिनाथ के मन्दिर में

है जिसकी नींव आचार्य कुमुद्रचन्द्र ने सं० १३३१ में रखी थी। अजयगढ़ में श्रेष्ठी सोढ़ल द्वारा प्रतिष्ठित सं० १३३५ में भ० शान्तिनाथ की प्रतिमा के पादपीठ में भी महाराज वीर वर्मदेव का नामोल्लेख है। इस तरह चंदेल वंश के लगभग चार सौ वर्षों के शासन में दस राजा हुए जिनके प्रश्रय और संरक्षण से जैन धर्म को बुन्देलखण्ड में खूब फूलने-फलने का अवसर प्राप्त हुआ।

अन्त में चन्देलों के धनकुबेर पाहिल्ल श्रेष्ठी का पुण्य स्मरण करते हुए उनकी उदार एवं विनम्र सद्वृत्ति का गुणाणुवाद करते हैं और शतशत नमन करते हैं जिसे हजार वर्ष बाद भी नहीं भूल सके हैं और भावी पीढ़ी भी उनका आदर करती रहेगी। अन्य श्रेष्ठियों को भी ऐसी विनीत और उदात्त प्रवृत्ति का परिचय देना चाहिए।

ध्यान : चित्त की एकाग्रता की कसौटी के लिए

महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

महावीर का वचन है जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है, वैसे ही समाधि में लीन होने पर चित्त विकल्पों से मुक्त हो जाता है।

लवण व्व सलिल जोए, झाणो चित्तं विलीयए जस्स।
तस्स सुहासुहडहणो, अप्पा अणलो पयासेइ ॥

वास्तव में चित्त मन की क्रियाशीलता का नाम है। मनुष्य के द्वारा जो कुछ भी होता है, उसके सारे निर्देश और इशारे मन के द्वारा ही होते हैं। इसलिए मनुष्य का जैसा मन होगा, उसके समस्त बरताव उसी के अनुरूप होंगे। जीवन-स्वास्थ्य के लिए न केवल स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है वरन् स्वस्थ मन की भी जरूरत है। मन की स्वस्थता शरीर के हर क्रियाकलाप के प्रति प्रभावी होती है; इसलिए जीवन-परिवर्तन के सारे क्रांति-सूत्र स्वयं मनुष्य के भीतर से आएंगे। जीवन के दृश्य बाहर हो सकते है, लेकिन जीवन जीवंतता तो हर कीमत पर भीतर से ही जुड़ी है। वही परिवर्तन जीवन के लिए कुछ मूल्य रखता है जो भीतर से आता है ऊपर से आने वाला हस्तक्षेप कोई परिवर्तन नहीं ला सकता, वह अन्दर से आएगा।

संसार का सारा फैलाव तो बस इन्द्रियों के उद्घाटन एवं उनकी गत्यात्मकता पर निर्भर है। पलक खुले तो सारा जहाँ आँखों में उत्तर आएगा। पलकें झुका लो, तो और तो और, खुद को भी नहीं देख पाओगे। हाथ-पाँव सब हमसे जुड़े रहेंगे पर बंद आँखों के सामने बहुत कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता। इन्द्रियाँ तो मात्र मीडिया है। मूल ऐजेन्सी तो भीतर है, इसलिए अगर ऐजेन्सी ही बिगड़ गई तो सब कुछ बिगड़ा ही समझो। आँख-कान अच्छे हों पर मन खराब हो तो देखने और सुनने का काम अच्छा कैसे होगा? *यदि किसी के मन के विचारों में* कामुकता के विचार हैं, तो वह *अगर पुरुष है, तो स्त्री को देखते ही* कामातुर हो उठेगा। ऐसे ही अगर स्त्री है तो पुरुष को देखकर। जिसके मन में "सैक्स" की भावना नहीं, वह पूरे "सैक्सी-एटमॉस्फियर" में जाकर भी उससे अप्रभावित ही रहेगा। इसी तरह क्रोध किये जाने पर यह कहा जाएगा कि उसके मन में क्रोध था। हर अभिव्यक्ति की पूर्व संभावना निश्चित तौर पर व्यक्ति की मानसिकता होती है। मनोशुद्धि या चित्तशुद्ध की अनिवार्यता इसीलिए है ताकि मनुष्य की हर

अभिव्यक्ति और गतिविधि शुद्ध, सभ्य और संस्कारित हो। यद्यपि मनुष्य की सारी गतिविधियाँ इन्द्रियों के द्वारा निष्पन्न और संपादित होती हैं पर उनका अच्छा और बुरा होना मन पर निर्भर है।

ध्यान का उपयोग मन की शुद्धि के लिए तो है ही, उसकी एकाग्रता की कसौटी के लिए भी है। भटकता मन रुग्ण है और शांत मन स्वस्थ। मन की उच्छृंखलता ही पागलपन का कारण बनती है। चूंकि सब कार्यों का स्रोत और निर्देशक मन है इसलिए मन का परीक्षण आत्यन्तिक जरूरी है।

चित्त की चंचलता की कसौटी के लिए ध्यान दैनन्दिनी परीक्षण है। मन का परीवीक्षण और परीक्षण ही वह मार्ग है, जिससे मनुष्य उन गतिविधियों से मुक्त हो सके, जो मुझे निष्ठ नहीं है। ध्यान करो तो ही चित्त की वस्तु स्थिति को देख-पढ़ सकोगे। चित्त की एकाग्रता की कसौटी ध्यान में ही संभव है। ध्यान हो ऐसा कि जिसमें किसी भी तरह का विकल्प और आलंबन न हो। महावीर ने ऐसा ही ध्यान किया था। उनका ध्यान विकल्प मुक्त तो था ही संकल्प-मुक्त भी था। वास्तव में संकल्प भी विकल्पों का ही एक सभ्य विकल्प है।

महावीर ने आलंबन भी किसी का नहीं लिया। वे तो अतलान्त आकाश की भाँति निरालम्ब थे। वैसे भटकते मन को एकाग्र करने के लिए प्राथमिक तौर पर किसी का आलंबन लिया जा सकता है। वह मदद अवश्य करेगा। आलंबन लेना हो तो किसी का भी ले सकते हो। मंदिर में बैठकर मूर्ति का, झरने पर बैठकर जलधारा का, सागर पर बैठे हों तो जल तरंग का, जंगल में बैठे हों तो वृक्ष का और घर में बैठे हों तो दीये की जोत का। कोई साधन न बैठे तो जेब में रखी पेंसिल को भी आलम्बन बना सकते हैं। एकाग्रता के लिए मात्र आलम्बन चाहिए, जो रुच जाये, चित्त की एकाग्रता उसी में केन्द्रित हो जाती है।

"संकीर्तन" या "संगीत" चित्त की एकाग्रता के लिए बेहद उपयोगी है। निश्चित तौर पर संगीतपूर्वक संकीर्तन करने से चित्त में एकाग्रता आएगी चूँकि संगीत में चित्त को उसका विषय मिल जाता है, इसलिए वहाँ एकाग्रता सध जाती है। ध्यान, चित्त की एकाग्रता के लिए नहीं वरन् उनकी एकाग्रता की कसौटी के लिए हैं। और पाठ से एकाग्रता सधेगी पर उस एकाग्रता की परीक्षा तो ध्यान में ही होगी। ध्यान के मायने हैं चित्त को देखना। आत्म-ध्यान के लिए साधक को सबसे पहले तो यह देखना पड़ता है कि शरीर के

साथ स्वयं की कितनी आसक्ति है। अकेले शांत बैठकर जब तक शरीर और आत्मा के बीच के तादात्म्य का ध्यान न करोगे तब तक कैसे जान पाओगे कि दोनों की बीच का गठबंधन किस अनुपात में है। ऐसे ही ध्यान में विचारों को भी देखना होता है, इसलिए ध्यान सर्वेक्षण की दृष्टि है।

हमारे मन में न जाने कितने विचारों का ऊहापोह मचता रहता है। विचार हजारों तरह के आते हों ऐसा भी नहीं है। विचार चलते हैं कोल्हू के बैल की तरह। जब हम अकेले बैठे हों तब अधिकतम चौबीस तरह के विचार आएंगे। अनुबन्ध के मार्ग पर तो विचार एक के बाद एक चलते ही रहते हैं परन्तु परस्पर विरोधाभासी विचार कम आते हैं। विचारों को यात्रा के लिए चाहिए अनुबंध, एक से दूसरे का कनैक्शन। चित्त में विचारों की अन्तहीन संभावनाएँ छिपी हुई हैं। चित्त का सारा समाज परमाणुओं से बना-बिखरा है। यह संसार की सबसे सूक्ष्मतम परमाणविक रचना है। सबसे सूक्ष्म किन्तु सबसे तीव्र। चित्त में जब विचार का एक परमाणु अपना मुँह खोलता है तो उसकी पदचाप से चित्त का दूसरा वैचारिक परमाणु सक्रिय हो जाता है। तीसरे को उत्प्रेरित कर देता है। इस प्रकार चित्त की सूक्ष्म ऊर्जा का वैचारिक संचरण चलता रहता है, पर एक खास बात कि विचार का जैसा पहला परमाणु होगा, अपने अनुबंध और प्रवाह के लिए वह अपने ही सहयोगी वैचारिक परमाणु को संचरित करेगा।

मानों अच्छे भाव का कोई एक परमाणु जगा तो दूसरा परमाणु स्वतः वही जगेगा, जिसके अस्तित्व में अच्छाई की कहीं कोई संभावना है। अच्छे विचारों का यह प्रवाह तब तक चलता रहेगा, जब तक संभावित अच्छे परमाणुओं का उसे साहचर्य मिलता रहेगा। यह भी संभव है कि क्षमा के सम्बन्ध में विचार उठ रहे हों और गलत वातावरण को देखकर तत्क्षण विचार क्रोध से तमतमा उठें, ऐसे प्रसंगों का अर्थ यह हुआ कि चित्त का ऐसा कोई न कोई सशक्त परमाणु अच्छे वैचारिक परमाणुओं के ओट में बैठा था, जो प्रसंग मिलते ही प्रकट हो गया।

चित्त की विचार-यात्रा कैसे चलती है, इसे समझें। मान लीजिए हम एकांत में बैठे हैं, मन अपनी धुन में कुछ गुनगुना रहा है तभी हमें कोयल की "कुहु-कुहु" सुनाई देती है। उस आवाज को सुनकर बीते समय की कोई बात तरोताजा हो उठती है कि ऐसी ही आवाज मैंने पाँच साल पहले मैसूर में सुनी थी। मैसूर का ध्यान आते ही वहाँ के "वृन्दावन-गार्डन" की याद आ-

गई। गार्डन की याद आई तो फूलों की भी याद हो आई। आह! कितने सुन्दर सुरक्षित-महकते फूल थे वे। तभी यह विचार भी दिमाग में हो आया कि उसने वहाँ ऐसे दो फूल तोड़ लिए थे, जो साल में केवल दो बार ही खिलते थे। जब फूल तोड़ने की याद आई तो यह भी विचार हो उठा कि तब माली ने उसे टोका था। उसके दोस्त के बीच-बचाव करने पर केवल दस रुपये के जुर्माने में ही बला टल गई। अब चित्त के वे परमाणु जब उठे है जिनका सम्बन्ध उस दोस्त के साथ था। अरे हाँ! वो तो कितना प्यारा था। मैं उसके घर ठहरा था, उसकी माँ ने मुझे कितनी प्यार से खाना खिलाया। अब माँ की याद हो आई। दोस्त की माँ ने ही तो उसे कहा था कि उसका पति शिकार खेलते समय मारा गया था। ऐसे चलता है विचारों का अनुबंधित प्रवाह! सारे विचार एक-दूसरे से कनेक्टेड हैं।

एक विचार से जुड़ी हुई यात्रा पच्चीस मिनट से ज्यादा नहीं हो सकती। पच्चीस मिनट से ज्यादा कोई भी विचार एकटक जागा खड़ा नहीं रह सकता। एक विचार से जुड़ी हुई यात्रा जैसे ही समाप्त होगी, दूसरे विचार से जुड़ी यात्रा स्वतः प्रारम्भ हो जाएगी। यदि जीने की कला न आए, बुद्धि में विवेक की क्षमता न जग पाये तो यह विचारों की यात्रा अनथक लगातार चलती रहती है।

चित्त के वैचारिक परमाणु भले ही गणना में न आएँ पर सारे परमाणु जीवन भर सक्रिय नहीं रह सकते। बिखरे हुए परमाणु तो अन्तहीन होते हैं, किन्तु सम्बद्ध (कनेक्टेड) परमाणु अधिक नहीं होते। विचारों की अज्ञात यात्रा, उन्हीं परमाणुओं से दम भर-भरकर चलती रहती है, जिनका परस्पर अनुबंध होता है। अनुबंध दूसरे अर्थों में आसक्ति है। इस अनुबंध का टूटना ही ज्ञात रूप में आसक्ति से ऊपर उठना है।

ऐसा नहीं है कि रोज-रोज नये-नये विचार आते हों। नित नये विचारों का जगना तो जीवन के द्वार पर विज्ञान की पहल है। विचारों का सारा लबादा तो बोदा/पुराना है। भिखारी के कपड़ों की गठरी का रोज-रोज खुलना है। मनुष्य है ऐसा जो जरें-जरें फटे कपड़े को रोज-रोज सींता है और अतीत की याद को वर्तमान में दोहराता है। इसलिए विचारों की यात्रा "हावड़ा एक्सप्रेस" का दिल्ली से कलकत्ता को रोजाना अप-डाउन होना है।

जीने की कला तो यही है कि व्यक्ति विचारों के उधेड़बुन से ठीक वैसे ही निकल जाये जैसे जंगल के बीच से रेलगाड़ी निकल जाया करती है।

जंगल जहाँ है वह वहीं पड़ा रहे तुम उससे पार हो चलो। चित्त के परमाणुओं का काम है फुद-फुद होना, वे होना चाहें होने दें। जो मन और विचार से स्वयं को अलग महसूस करता है उसकी कृति, मन के अनुसार न होगी। केस तो तब चलेगा जब हम किसी विचार को अपनी अहमियत मानेंगे। इसलिए यह बात दिल में घर कर रखो कि हम मन से अलग हैं।

विचारों का क्या ! वे तो जब-तब जोर करते रहते हैं। दिन में करते हों ऐसा नहीं रात में तो पुरजोर करते हैं। स्वप्न विचारों की ही यात्रा है। दिन में कुंठित हुए विचार ही सपनों में उभरते हैं। व्यक्ति को स्वप्न इसलिए आता है क्योंकि व्यक्ति ने अपने विचारों को कुंठित कर रखा है। रात में हम अकेले होते हैं। नींद में व्यक्ति वास्तव में ही निपट अकेला होता है इसीलिए तो नींद बड़ी मीठी होती है। नींद से ज्यादा मिठास और किसी में नहीं है। नींद में सपने आते हैं। जब आँखें बंद होती हैं, दुनिया से बेखबर होती हैं तब चित्त की वैचारिक सक्रियता और तीव्र गति पूर्ण हो जाती है। यही कारण है कि ध्यान में भी चित्त चंचल हो जाता है और विचार उठते हैं।

मैं ध्यान के लिए इसीलिए निवेदन/प्रेरणा कर रहा हूँ ताकि हम अपने टर्र-टर्र उठने वाले विचारों को देख-पढ़ सकें। स्वप्न मे वो जो देखा है उसके प्रति हमारी कोई जागरूकता नहीं होती। ध्यान, शरीर और इन्द्रियों का सोना ही है परन्तु विचारों के प्रति जागना है। इसलिए ध्यान, जागरूकता-पूर्वक की जाने वाली नींद है। शरीर की दृष्टि से यह सोना है लेकिन विचारों की दृष्टि से यह जागना है। यदि स्वप्न को भी जागरूकतापूर्वक देख सको तो वह सोना भी ध्यान ही है। स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रति की यही अर्थ संभावना है।

स्वप्न कभी जागरूकतापूर्वक नहीं लिया जा सकता। नींद से जगने पर स्वप्न के जो विचार या दृश्य हमें याद रह जाते हैं वे तो मात्र स्वप्न के अंश भर होते हैं। मैं तो कहूँगा कि जब स्वप्न से जागो तो अपने स्वप्नों पर गहराई से नजर डालना। स्वप्नों को पढ़ना, वास्तव में चित्त को ही पढ़ना है। स्वप्न, चित्त का जागरण है। चित्त की खराबियों से मुक्ति पाने के लिए उसकी हर गतिविधि को पढ़ना चाहिए यही तो स्वाध्याय है। स्वयं के विचारों को पढ़ना, स्वयं की वास्तविकताओं को पढ़ना है। विचारों की पुनरावृत्ति होती रहती है इसलिए बुरे विचार भी बार-बार आते रहते हैं और अच्छे विचार भी दुहराते रहते हैं। जीवन की मौलिक चिकित्सा करने

के लिए हमें चित्त की विक्षिप्तता को जड़ से उखाड़ना होगा। हर रोग की दवा है, पहले नब्ज तो पकड़ में आये। चित्त को देखना और विचारों को पढ़ना नब्ज को ही पकड़ना और पड़तालना है।

ध्यान, जीवन की इस चिकित्सापद्धति में हमारा सहचर बनेगा। आत्म-परिष्कार के लिए विचारों की शुद्धि और भावों की तटस्थता सर्वाधिक फायदेमंद है। मन में जो भी आए, उसे सतर्कतापूर्वक बड़े प्यार से पढ़ें, ठीक वैसे ही पढ़ें, जैसे किसी महापुरुष के चरित्र या धर्मग्रन्थ को पढ़ते हैं। यह पढ़ना आत्मनिरीक्षण है। हमारा विवेक ही मन में उठने वाले द्वन्द्व को अलग-अलग करेगा। ध्यान के अभ्यास से विकल्पों की भरमार खाली होती जाएगी और तब जो शेष बचेगा स्वभाव में शांति उसी का नाम होगा। अस्तित्व के वास्तविकता का तत्व बोध तभी तो मुखर होगा। तब आत्मज्योति प्रगट होगी। कर्मों की कलुषता राख होगी और चित्त विकल्प-मुक्त शांति में ठीक वैसे ही लीन होगा जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

शिष्य के द्वारा इस प्रकार युक्तिपूर्ण प्रत्युत्तर से पराजित होकर नमुची स्वस्थान को लौट गए। राजा और उनके अनुचर भी लौट गए। आधी रात को नमुची शय्या त्याग कर अत्यधिक क्रोध से प्रज्वलित बना राक्षस की तरह मुनि शिष्य को मारने के लिए उद्यान की ओर गया। सपेरा जिस प्रकार सर्प को स्तम्भित कर देता है उसी प्रकार शासन देवी ने उसे उद्यान के बाहर ही स्तम्भित कर दिया। प्रातःकाल समस्त जनता ने उसे उसी प्रकार देखा—राजा और प्रजा ने भी जब इस अलौकिक घटना को देखा और धर्म श्रवण किया तब वह मद रहित हस्ती की भाँति शान्त हो गया।

इस प्रकार अपमानित होकर नमुची हस्तिनापुर चला गया। अभिमानी व्यक्ति अपमानित होने पर विदेश में ही आश्रय लेते हैं। युवराज महापद्म ने उसे प्रधानमन्त्री नियुक्त कर दिया।

महाबल के राज्य सीमान्त में सिंहबल नामक एक राजा राज्य करते थे। जिस प्रकार आकाश में अवस्थान करने के कारण राक्षस शक्तिशाली होते हैं उसी प्रकार सुदृढ़ दुर्ग में अवस्थान करने के कारण वे शक्तिशाली थे। वे बार-बार महापद्म के राज्य पर आक्रमण कर स्वदुर्ग को लौट आते थे। किन्तु कोई उन्हें न पकड़ पाता न पराजित कर पाता। महापद्म ने एक दिन नमुची से कहा, 'सिंहबल को पकड़ने का क्या आप कोई उपाय जानते हैं?' नमुची ने उत्तर दिया, 'युवराज मैं जानता हूँ पर यह कैसे कहूँ? तब तो घर में बैठा मैं गर्व कर रहा हूँ यही अपवाद मेरे नाम के साथ जुड़ जाएगा। स्व-कौशल का प्रयोग कर परिणाम दिखाकर मैं आपको प्रश्न का उत्तर दूँगा। जो विज्ञ होते हैं वे भी कौशल के विषय में कुछ कहने की इच्छा नहीं करते।'

महापद्म यह बात सुनकर आनन्दित हुए और नमुची को आदेश दिया। नमुची तत्क्षण चक्रवात की तरह सिंहबल के दुर्ग के पास गया और कौशल का प्रयोग कर दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। सिंह जिस प्रकार हरिण को पकड़ता है उसी प्रकार उसने सिंहबल को पकड़कर महापद्म के सम्मुख उपस्थित किया। महापद्म प्रसन्न होकर नमुची से वर माँगने को कहा। नमुची ने उत्तर दिया—'मैं यथासमय इस वर को मांगूंगा।' उद्देश्य पूर्ण होने से महापद्म नमुची सहित युवराज की भाँति राजकार्य देखने लगे।

महापद्म की माँ ने संसार समुद्र को अतिक्रमण करने के लिए कर्णीरथ की भाँति अर्हत्‌बिम्ब के लिए एक रथ निर्मित करवाया। उसके विरुद्धाचरण के लिए मिथ्यामतावलम्बिनी उनकी सौतेली माँ लक्ष्मी ने ब्रह्मा के लिए एक रथ बनवाया और राजा से बोली, 'नगर में पहले ब्रह्मा का रथ निकलेगा, उसके बाद अर्हत् का।' ज्वाला बोली—'यदि अर्हत् का रथ प्रथम बाहर नहीं निकला तो वह अनशन ग्रहण कर लेगी।' ऐसी स्थिति में राजा ने दोनों ही रथों का निकलना बन्द करवा दिया। निरपेक्ष व्यक्ति इसके अतिरिक्त और क्या कर सकता है? माँ के दुःख से क्षुब्ध होकर महापद्म रात्रि के समय जबकि समस्त नगर सोया हुआ था हस्तिनापुर का परित्याग कर अन्यत्र चले गए। इधर-उधर जाते हुए उन्होंने एक महारण्य में प्रवेश किया। वहाँ उन्हें एक आश्रम दिखलायी पड़ा। अतिथि-वत्सल वहाँ के तपस्वियों द्वारा सत्कृत होकर महापद्म उसी आश्रम में घर की तरह रहने लगे।

राजा काल ने चम्पानगरी पर आक्रमण किया फलतः चम्पा के राजा जन्मेजय पराजित हो गए। नगरी की सुरक्षा भंग हो गयी। दावानल में हरिणियाँ जिस प्रकार दिक्‌भ्रमित ज्ञानहीन होकर दौड़ती हैं उसी प्रकार अन्तःपुरिकाएँ भी जिसको जिधर जगह मिली भाग छूटीं। चम्पा की रानी नागवती ने अपनी कन्या मदनावली को लिए उस आश्रम में आश्रय ग्रहण किया। पद्म और मदनावली ने काम के वशीभूत होकर एक दूसरे को देखा और एक दूसरे के प्रति आसक्त हो गए। मदनावली को प्रेमासक्त देखकर उसकी माँ बोली, 'यह क्या? इतनी चंचल क्यों हो गयी हो? तुम चक्रवर्ती राजा की पत्नी बनोगी। भविष्यवक्ता का वह कथन स्मरण करो। अतः जिस किसी के प्रेम में पड़ना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। संयम रखो। यथासमय चक्रवर्ती के साथ तुम्हारा विवाह होगा।'

राज्यकन्या का अमंगल हो सकता है सोचकर कुलपति ने महापद्म को बुलवाया और बोले—'पुत्र, तुम जहाँ से आए हो वहीं लौट जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।'

यह सुनकर महापद्म सोचने लगे एक समय में दो चक्रवर्ती नहीं होते। जब मैं ही भविष्य में चक्रवर्ती बनूँगा तब तो यह मेरी ही पत्नी है—ऐसा सोचकर महापद्म उस आश्रम का परित्याग कर निकल गए और घूमते हुए सिन्धुसदन नगर में पहुँचे। उस समय उस नगर में बसन्तोत्सव हो रहा था। इसलिए उस नगर की स्त्रियाँ बाहरी उद्यान में एकत्रित होकर नाना प्रकार

की क्रीड़ा कर कामदेव की उपासना कर रही थीं। उनका कोलाहल सुनकर राजा महासेन के हाथी ने कदली वृक्ष की तरह आलान स्तम्भ को उखाड़ डाला। पीठ पर बैठे दोनों आरोही को बिछावन की धूल की तरह झाड़ फेंका। हवा भी मानो उसका स्पर्श नहीं कर रही है इस प्रकार द्रुतगति से वह वहाँ पहुँचा जहाँ नगरवासी क्रीड़ा कर रहे थे। महावत लोग दूर से कुछ भी नहीं कर सके। लड़कियाँ मारे भय के भाग भी नहीं सकीं। जहाँ खड़ी थीं वहीं स्तम्भित-सी मकर द्वारा आकृष्ट हंसनियाँ जिस प्रकार चित्कार करती है उसी प्रकार चिल्लाने लगीं। उनका चित्कार सुनकर महापद्म करुणा के वशीभूत होकर हाथी जिस ओर भागा उसी ओर दौड़े और उसकी भर्त्सना करते हुए बोले, 'अरे ओ मदोन्मत्त हाथी, तू इधर देख।' वह क्रुद्ध हाथी पदाघात से विदीर्ण पृथ्वी को बारम्बार कम्पित करता हुआ महापद्म की ओर मुड़ा। तभी वे लड़कियाँ बोल उठीं, 'हमें बचाने के लिए कोई महामना ने यम के मुख में जाने की भाँति स्वयं को हस्ती के सामने डाल दिया है।' जैसे ही वह दुष्ट हाथी उनके सम्मुख आकर समीप खड़ा हुआ, उन्होंने अपना उत्तरीय उतार कर आकाश में उछाल दिया। कभी-कभी छलना भी लाभ-जनक हो जाती है। उनके उस उत्तरीय को ही मनुष्य समझकर हाथी उसको छिन्न-भिन्न करने लगा। क्रोध सभी को अन्धा कर देता है। फिर जब वह क्रोध एवं अहंकार से युक्त हो जाता है तब तो उसमें सौगुणी वृद्धि हो जाती है।

उच्च कोलाहल सुनकर तब तक उस नगर के लोग वहाँ आ पहुँचे। सामन्त और सेनापति से परिवृत्त महाराज महासेन भी वहाँ उपस्थित हो गए थे। महासेन ने महापद्म को पुकार कर कहा, 'हे साहसी युवक, शीघ्र वहाँ से भाग जाओ। इस क्रुद्ध हाथी द्वारा मृत्यु प्राप्त कर क्या लाभ?' महापद्म ने प्रत्युत्तर दिया, 'महाराज, यह आप कह सकते हैं किन्तु मैंने जिस काम को हाथ में लिया है उसे बीच में ही छोड़ देना मेरे लिए लज्जास्पद है। आप देखें मैं किस प्रकार इस दुष्ट हाथी को वश में करता हूँ। देखकर लगेगा मानो जन्म से लेकर आज तक वह कभी उन्मत्त हुआ ही नहीं। दया के वशीभूत आप भय को प्रश्रय मत दीजिए।'

हाथी ने जैसे ही उस वस्त्र को छिन्न करने के लिए माथा नीचे किया महापद्म ने उसी क्षण मुष्टि द्वारा उसके मस्तक पर प्रहार किया। जब हाथी ने उन्हें पकड़ने के लिए माथा ऊँचा किया, वे विद्युत्गति से उसकी पीठ पर

जा बैठे। कभी सामने, कभी बगल में विभिन्न स्थानों से हटते हुए, कभी मण्डुकासनादि से स्वयं को बचाते हुए वे उस हाथी पर मुष्टि-प्रहार करने लगे। कभी-कभी कुम्भ पर थप्पड़ मारकर, कभी कानों पर घूंसा लगाते हुए, कभी पीठ पर लात जमाकर उसे विव्रत करने लगे। लोग आश्चर्य से उन्हें देखने लगे और वाह-वाह करने लगे। राजा ने उनके वीरत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की। महावतों में अग्रगण्य वे युवराज पहले उस हाथी को अपनी इच्छानुसार चलाने लगे। फिर उससे खेल का प्रदर्शन करवाया मानो वह अब भी बच्चा ही है। फिर वे उस हाथी को चलाकर दूसरे हाथी के समीप ले गए, और इस हाथी को उस हाथी के महावत के हाथ में देकर उस हाथी की पीठ पर पाँव रखकर नीचे उतर आए।

महापद्म के सौन्दर्य और शक्ति से राजा ने अनुमान लगाया, यह युवक निश्चय ही उच्चकुल जात है। अतः वे महापद्म को साथ लेकर राजमहल लौटे और अपनी एक सौ कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। बहुत बड़े पुण्य से ही ऐसा वर घर बैठे प्राप्त होता है। यद्यपि महापद्म उन राज-कन्याओं के साथ दिन-रात सुख भोग कर रहे थे फिर भी मदनावली की स्मृति उन्हें काँटे की तरह बींध रही थी।

एक दिन जबकि वे हंस जैसे कमल पर सोया रहता है उसी प्रकार सुख-शय्या पर सो रहे थे तभी वेगवती नामक एक विद्याधरी वायु की भाँति द्रुतगति से उनका अपहरण कर उन्हें ले जाने लगी। 'अरी ओ मेरी नींद भंग करने वाली, तुम मुझे अपहरण कर कहाँ ले जा रही हो?' कहते हुए कुमार ने अपनी वज्र की भाँति कठोर मुष्टि उत्तोलित की। वेगवती बोली, 'हे बलशाली, क्रुद्ध मत् होइए। शान्त होकर सुनिए। वैताढ्य पर्वत पर सुरोदय नामक एक नगर है। विद्याधर पति इन्द्रधनु वहाँ के राजा हैं। उनकी रानी का नाम श्रीकान्ता है। उनके जयचन्द्रा नामक एक कन्या है। उसके उपयुक्त वर न मिलने के कारण वह पुरुष विद्वेषिणी हो गयी है। पति के बिना स्त्री जीवित ही मृत है। इसलिए मैंने भरतक्षेत्र के राजाओं का चित्र अंकित कर उसे दिखाया किन्तु उसने उनमें से किसी को भी पसन्द नहीं किया।

'एक दिन मैंने उसे आपका चित्र अंकित कर दिखाया। आपका चित्र देखते ही वह काम के वशीभूत हो गयी। पहले जो पुरुष विद्वेषिणी थी अब वह जीवन विद्वेषिणी हो गयी है। कारण पति रूप में आपको पाना बहुत कठिन है। तब उसने बोली, 'पद्मोत्तर के पुत्र महापद्म ही मेरे स्वामी होंगे। कहीं जो

मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।' जयचन्द्रा आपसे प्रेम करती है यह बात मैंने उसके माता-पिता से कही। उनकी कन्या ने उपयुक्त पात्र खोज लिया है जानकर वे आनन्दित हुए। देव, मेरा नाम वेगवती है। महाविद्या की अधिकारिणी होने के कारण उन्होंने मुझे आपको लाने के लिए भेजा है। आपके प्रेम में पड़ी जयचन्द्रा को आश्वस्त करने के लिए मैंने कहा है तुम्हारे हृदय कमल के लिए सूर्य समान महापद्म को या तो मैं लेकर आऊँगी नहीं तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी। तुम शान्त हो जाओ। इस प्रकार उसको शान्त कर मैं यहाँ आयी हूँ और उसके जीवन सुख के लिए अमृत रूप आपको वहाँ ले जा रही हूँ। आप मुझ पर दया करें। क्रुद्ध न हों।' महापद्म के सहमत होने पर वेगवती उन्हें अभियोगिक देव जिस गति से अपना रथ दौड़ाते हैं उस गति से सुरोदय नगर में ले गयी। प्रभात का सूर्य जैसे पूजित होता है उसी भाँति इन्द्रधनु द्वारा पूजित होकर महापद्म ने चन्द्र ने जैसे रोहिणी से विवाह कर लिया था उसी प्रकार जयचन्द्रा से विवाह कर लिया।

जयचन्द्रा के अनेक विद्याओं के अधिकारी गंगाधर और महीधर नामक दो भाई थे। विद्या और स्वबल के अहंकार में मत्त जब उन्होंने इस विवाह की बात सुनी तो क्रुद्ध हो उठे। एक ही वस्तु को जब अनेक चाहने लगते हैं तब वह महायुद्ध का कारण हो जाती है। वे लोग अपनी सेना लेकर महापद्म के साथ युद्ध करने सुरोदय नगरी आए। असीम शक्ति के धारक महापद्म सामान्य विद्याधरों की सेना लेकर उनसे निश्छल युद्ध करने नगर परित्याग कर वहाँ पहुँचे। विपक्ष की सेना में किसी को भयभीत कर किसी को आहत कर, किसी को पददलित कर सिंह जैसे हस्ती को पराजित करता है उसी प्रकार सहज ही उन्होंने उनकी सेना को हरा दिया। गंगाधर और महीधर ने जब अपनी सेना को पराजित होते देखा तब अपने प्राण बचा कर भागे।

कालान्तर में महापद्म के यहाँ चक्ररत्नादि उत्पन्न हुए। महाबलवान उन्होंने छह खण्ड भारतक्षेत्र को जीत लिया। शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के चन्द्र की तरह प्राय पूर्ण होने पर भी जैसे उसमें एक कला का अभाव रहता है उसी प्रकार चक्रवर्ती का समस्त वैभव प्राप्त कर भी उन्हें स्त्रीरत्न का अभाव था। स्त्री-रत्न मदनावली को जिसे पूर्व ही उन्होंने देखा था स्मरण कर आश्रम पद में तुरन्त गए। आश्रमवासियों ने उनका आदर किया और मदनावली के पिता जन्मेजय ने जो कि घूमते हुए वहीं आ पहुँचे थे उन्हें अपनी कन्यादान कर दी।

चक्रवर्ती का पूर्ण वैभव लेकर महापद्म हस्तिनापुर लौट आए और आनन्दमना होकर पहले की तरह माता-पिता को प्रणाम किया। वे भी उनको पाकर बहुत प्रसन्न हुए। कानों के लिए अमृत तुल्य पुत्र के असीम साहसिक कार्यों को सुनकर वे जलसिंचित वृक्ष की भाँति उत्फुल्ल हो उठे।

मुनि सुव्रत स्वामी द्वारा दीक्षित आचार्य सुव्रत विचरण करते हुए एक दिन हस्तिनापुर आ पहुँचे। राजा पद्मोत्तर अनुचरों सहित उन्हें वन्दना करने गए। वन्दना करने के पश्चात् संसार विरक्ति की जननी रूपा उनकी देशना सुनी। राजा ने आचार्य से कहा, 'पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर जब तक मैं नहीं लौटूँ तब तक आप यहीं अवस्थान करें।' 'शुभ कार्य में विलम्ब मत करो' आचार्य श्री का यह कथन सुनकर उन्हें पुनः वन्दना कर राजा नगर में लौट आएँ और राज्य के प्रधान पुरुष मन्त्रीगण और सामन्तादि को बुलाकर विष्णुकुमार से बोले—

'पुत्र, सांसारिक जीवन दुखों का सागर है। रोग के साथ-साथ हानिकारक कुपथ्य की इच्छा जैसे बढ़ती रहती है वैसे ही सांसारिक जीवों की भी प्रतिकार्य के साथ कार्य की इच्छा बढ़ती जाती है। मेरे सौभाग्य से आचार्य सुव्रत संसार पतित मुझे उसी प्रकार हाथ बढ़ाकर सहारा देने आए हैं जिस प्रकार कुएँ के नजदीक जाते हुए अन्धे की सहायता को हाथ बढ़ा दिया जाता है। अतः आज मैं तुम्हें सिंहासन पर बैठाकर और निश्चिन्त होकर आचार्य सुव्रत से दीक्षा ग्रहण करूंगा।'

विष्णुकुमार बोले, 'पिताजी, मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं भी आपके साथ ही दीक्षा लेकर आपके पथ पर ही चलूँगा।' तब पद्मोत्तर ने महापद्म को बुलवाया और बोले, 'पुत्र, तुम सिंहासन ग्रहण करो ताकि मैं दीक्षा ले सकूँ।' तब महापद्म करबद्ध होकर बोले, 'पिताजी, आपके समतुल्य अग्रज विष्णुकुमार के रहते मेरा राज्य ग्रहण करना अनुचित है। राज्यशासन में समर्थ अग्रज विष्णुकुमार को ही आप राज्यभार दें। मैं उनके अनुचर की भाँति युवराज पद ग्रहण करूँगा।' राजा बोले, 'मैं तो विष्णुकुमार को ही राज्य देना चाहता था किन्तु वह राज्य नहीं चाहता, वह तो मेरे साथ दीक्षा लेने को तत्पर है।'

महापद्म निरुत्तर हो गए। तब राजा पद्मोत्तर ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। साथ ही साथ चक्रवर्ती रूप में भी उनका अभिषेक हुआ। राजा पद्मोत्तर और विष्णुकुमार का अभिनिष्क्रमण उत्सव महापद्म द्वारा सम्पन्न होने पर वे दोनों आचार्य सुव्रत के पास जाकर दीक्षित हो गए।

महापद्म ने अर्हत बिम्ब सहित माँ का रथ नगर के बाहर निकाला। उनके शासन की तरह सभी ने उस बिम्ब का पूजन किया। रथ यात्रा के समय पद्मोत्तर और अन्यान्य साधुओं सहित आचार्य सुव्रत वहाँ उपस्थित थे। चारित्र सम्पन्न महापद्म ने अपने परिवार के साथ जिन शासन की प्रभावना की। उन्होंने नगर ग्राम खान एवं पत्तन में कोटि-कोटि रूपए व्यय कर इतने विशाल जिनालए बनवाए मानो पहाड़ ही उठ खड़े हुए हो।

गुरु के साथ विचरण एवं महाव्रतों का सदरूप में पालन करते हुए मुनि पद्मोत्तर ने केवलज्ञान प्राप्त किया और उसका फल मोक्ष भी। मुनि विष्णकुमार ने भी उग्र तपश्चर्या कर बहुत सी लब्धियाँ प्राप्त कर ली। उन्होंने मेरू की तरह ऊँचा बनना, गरुड़ की तरह आकाश पथ से जाना, देवों की तरह रूप परिवर्तन कर लेना, कामदेव-सा सुन्दर रूप धारण करना, भाँति-भाँति के आकार धारण करना आदि-आदि लब्धियाँ प्राप्त हो जाने पर भी वे उसका प्रयोग नहीं करते थे। कारण साधुओं को भला इन लब्धियों से क्या प्रयोजन?

चातुर्मास के लिए एक दिन आचार्य सुव्रत शिष्यों सहित हस्तिनापुर आए। मन्त्री नमूची को जब ज्ञात हुआ कि आचार्य आए हैं तो पूर्व वैर का बदला लेने के लिए महापद्म को जाकर बोला, 'आप मुझे जो वर देना चाह रहे थे वह आज दीजिए।' आर्यों द्वारा दी गयी प्रतिश्रुति बन्धक रखे धन की तरह सुरक्षित रहती है। राजा बोले, 'बोलिए मन्त्रीवर, आपको क्या वर दूँ?' नमूची बोला, 'मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ वह यज्ञ जब तक समाप्त नहीं हो जाता है तब तक आपका राज्य मुझे दें।' प्रतिश्रुति की रक्षा के लिए महापद्म ने नमूची को सिंहासन पर बैठाकर स्वयं अन्तःपुर मे चले गए।

नमूची नगर का परित्याग कर यज्ञस्थली पर गया और स्वयं को यजमान एवं राजा रूप में प्रतिष्ठित किया किन्तु उसके मन में मायाचार था। बगुला भगत की तरह वह भीतर से कुछ और था बाहर से कुछ और। उस उत्सव में समस्त प्रजाजन आए। सुव्रत सूरि के श्वेत भिक्षुओं को छोड़कर सभी धर्म सम्प्रदायों के तापस आए। नमूची ने मन ही मन सोचा मेरे प्रति विद्वेष भाव रखने के कारण ही श्वेत साधु नहीं आए। असत् भावना के कारण नमूची इसी बहाने विवाद खड़ा कर सुव्रत मुनि के पास गया और कटुक्ति करता हुआ बोला, 'चाहे राजा कोई भी हो तपस्वी और साधुओं को उनके पास जाना चाहिए। क्योंकि वे जिस उद्यान और वाटिका में तपस्या

करते हैं उसका रक्षक राजा होता है। इस प्रकार वह तपश्चरण के छठे भाग का अधिकारी है किन्तु तुम अधम धर्मद्वेषी एवं मेरे निन्दक हो। साथ ही राज्य और जनगण के विरोधी हो। अतः तुम अब इस राज्य में अवस्थित नहीं रह सकते। अन्यत्र चले जाओ। तुम्हारा जो कोई भी यहाँ रहेगा मैं उसकी हत्या करूँगा।'

आचार्य सुव्रत बोले, 'हम आपके राज्याभिषेक पर इसलिए नहीं गए कि यह हमारे आचार और मर्यादा के विरुद्ध है। हमारे मन में आपके लिए या किसी अन्य के लिए कोई भी दुर्भावना नहीं है।'

क्रुद्ध नमूची ने प्रत्युत्तर दिया, 'मैं कोई बात सुनना नहीं चाहता। मैं आपको सात दिनों का समय देता हूँ। इसके पश्चात् जो यहाँ रहेगा उसे वही दण्ड दिया जाएगा जो एक दस्यु को दिया जाता है।' ऐसा कहकर नमूची स्वगृह चला गया।

आचार्य सुव्रत मुनियों से बोले, 'ऐसी स्थिति में अब हमलोगों को क्या करना चाहिये? तुमलोगों का क्या अभिमत है?'

एक साधु बोले, 'विष्णु कुमार ने छ हजार वर्षों तक तपस्या की है। वे अभी मन्दार पहाड़ पर हैं। वे राजा महापद्म के अग्रज हैं। उनके आदेश से नमूची शान्त हो जाएगा। कारण वे नमूची और महापद्म के भी स्वामी हैं। अतः जो आकाश गामिनी लब्धि के अधिकारी हैं वे वहाँ जाकर उन्हें ले आएँ। संघ के कार्य के लिए लब्धि का व्यवहार अनुचित नहीं है।'

एक साधु बोले, 'मैं आकाश पथ से वहाँ जा सकता हूँ किन्तु लौट नहीं सकता। आप बताएँ मैं क्या करूँ?' गुरु बोले, 'विष्णुकुमार निश्चय ही तुम्हें ले आएँगे। इस प्रकार आश्वस्त होकर वह शिष्य गरुड़ की तरह आकाश पथ से क्षण भर में विष्णुकुमार के पास जाकर उपस्थित हो गए। विष्णुकुमार उन्हें देखकर मन ही मन सोचने लगे—मुनि का इतनी शीघ्रता से आना संघ के किसी विशेष कार्य को सूचित कर रहा है। अन्यथा चातुर्मास के समय साधु का विहार निषिद्ध है। फिर वे लब्धि का भी इस प्रकार प्रयोग नहीं करते। विष्णुकुमार ऐसा सोच ही रहे थे कि वे साधु उनके निकट गए, उन्हें वन्दना की और अपने आने का कारण बताया। सब कुछ सुनकर विष्णुकुमार क्षणमात्र में ही हस्तिनापुर आए और अपने गुरु की वन्दना की। तदुपरान्त साधुओं द्वारा परिवृत होकर वे नमूची की राजसभा में गए। नमूची के अतिरिक्त अन्य सभी राजाओं ने उन्हें वन्दन किया।

सबको धर्म लाभ देकर विष्णुकुमार धीरकण्ठ से बोले—'राजन्, वर्षा का समय है अतः अभी इन मुनियों को आप यहीं रहने दें। ये स्वयं ही एक स्थान पर अधिक दिन नहीं रहेंगे। अभी वर्षाकाल है। अत्यधिक जीवोत्पत्ति होने के कारण अन्यत्र विहार नहीं कर सकते। हमलोगों जैसे भिक्षा-जीवियों का इस वृहत् नगर में रहने से आपकी क्या क्षति हो सकती है? भरत, आदित्य, सोम आदि सभी राजाओं ने साधुओं का सम्मान किया है। आप यदि ऐसा नहीं कर सकते हैं तो मात्र चार मास वर्षा तक उन्हें यहीं रहने दें।'

नमूची विष्णुकुमार का यह कथन सुनकर कर्कश स्वर में बोला—'ज्यादा बातें करने से कोई लाभ नहीं है। मैं तुमलोगों को यहाँ रहने नहीं दूँगा।'

सामर्थ्य होने पर भी विष्णुकुमार शान्त स्वर में बोले, 'ठीक है तब उन्हें नगर के बाहर उद्यान में ही रहने दें, वे नगर में प्रवेश नहीं करेंगे।' स्वयं को मंत्री रूप में अभिहित करने वाला नमूची महामुनि को क्रुद्ध कण्ठ से बोला, 'मैं तुमलोगों की गन्ध भी सहन नहीं कर सकता, रहने देना तो दूर की बात है। दस्यू जैसे सदाचारहीन श्वेत वस्त्र धारीगण न नगर में रह सकते हैं न नगर के बाहर। यदि स्वयं का जीवन तुमलोगों को प्रिय है तो शीघ्र इस स्थान का परित्याग करो। यदि ऐसा नहीं किया तो गरूड़ जैसे सर्प की हत्या करता है मैं भी उसी प्रकार तुम्हारी हत्या करूँगा।'

आहुति देने से अग्नि जैसे प्रज्वलित हो जाती है—विष्णुकुमार भी नमूची के कथन पर उसी प्रकार प्रज्वलित हो उठे। बोले, 'तब आप मुझे यहाँ पर त्रिपाद (तीन पैर भर) भूमि दीजिए।' प्रत्युत्तर में नमूची ने कहा, 'मैंने तुम्हें त्रिपाद भूमि दी किन्तु जो इस त्रिपाद भूमि के बाहर आएगा उसकी मैं हत्या करूँगा।' 'तब दीजिए' कहकर विष्णु कुमार बढ़ने लगे। मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में माला, हाथ में धनुष, वज्र और खड्ग धारण कर ली। मारे भय के खेचर चिल्लाते हुए जीर्ण पत्रों की तरह जमीन पर गिरने लगे। पदाघात से कमलपत्र जैसे कम्पित होता है उसी प्रकार पृथ्वी काँपने लगी। प्रलयकालीन पवन से जैसे समुद्र उत्क्षिप्त हो जाता है उसी प्रकार समुद्र उत्क्षिप्त हो गया। बाधा पाकर नदियाँ विपरीत दिशा में प्रवाहित होने लगी। सामान्य ढेले की तरह नक्षत्र पुंज इधर-उधर बिखरने लगे। बड़े-बड़े पर्वत वल्मीक की भाँति टूट-टूट कर गिरने लगे। प्रदीप्त विष्णुकुमार विशाल होते-होते विभिन्न आकार धारण कर सुरासुर सबको भयभीत करते हुए मेरु पर्वत की उच्चता को प्राप्त हो गए।

त्रिभुवन में कोलाहल होते देख इन्द्र ने उन्हें शान्त करने के लिए गायिका देवियों को उनके पास भेजा। वे लोग उनके कानों में जिनवाणी के अनुरूप गीत गंधार राग में अनवरत गाने लगीं जिसका भावार्थ था—'क्रोध ही समस्त अनर्थ की जड़ है। क्रोध में मनुष्य भूल जाता है उसका कल्याण किसमें है। मृत्यु के पश्चात् असह्य वेदना वाले नरक में वह जाता है।' इस प्रकार गाकर किन्नर कन्याएँ उनका क्रोध शान्त करने के लिए उनके सन्मुख नृत्य करने लगीं। विष्णुकुमार ने नमूची को जमीन पर पटक कर—उनके चरण कमलों की जय हो, एक पाँव पूर्व समुद्र के किनारे और दूसरा पाँव पश्चिम समुद्र के किनारे रखा।

महापद्म ने जब यह बात सुनी तब वह अपने प्रमाद और मंत्री के अपराध से भयभीत बने तुरन्त वहाँ उपस्थित हुए। अग्रज को भक्ति भाव से वन्दना करते हुए अश्रुजल से उनके चरण कमलों को सिंचित कर बोले—

'हे प्रभु आज ही मुझे पिता श्री पद्मोत्तर की याद आ रही थी जिनमें अनन्त गुण थे। उनकी जय हो। मैं तो जान ही नहीं पाया कि मेरा दुष्ट मंत्री पवित्र संघ पर अत्याचार कर रहा है। फिर भी दोषी मैं ही हूँ क्योंकि ऐसा दुष्ट मेरा भृत्य है। भृत्य के अपराध के लिए नीति शास्त्र में कहा है—उसमें प्रभु का भी अपराध है। मैं तो आपका भृत्य हूँ कारण मेरे प्रभु तो आप ही हैं। अतः मेरा अपराध आपको भी लगेगा। आप क्रोध संवरण करें। उस दुष्ट के अपराध से तीनों लोक प्राण भय से भयभीत है। हे महामुनि, हे दयानिधि, आप जिन्हें त्रासित कर रहे हैं उन्हें आश्वस्त करिए।'

इस प्रकार नानाविध स्तुति कर राजन्य, देव, असुर और चतुर्विध संघ ने मुनि को शान्त किया। उन्होंने तो वह उच्चता प्राप्त की थी जहाँ मनुष्य का कण्ठ स्वर नहीं पहुँच सकता अतः वे उनकी स्तुति सुन नहीं सके थे। किन्तु जब भक्ति भाव से उन्होंने चरण स्पर्श किया तो मुनि ने नीचे की ओर देखा तो उनके सन्मुख उनका भाई, चतुर्विध संघ, देवता, असुर और राजन्यों को खड़े पाया। तब वे सोचने लगे—

यह पवित्र संघ दयाप्रार्थी है, मेरा भाई दुःखी है, ये सब एक साथ मिलकर मेरा क्रोध शान्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। संघ का सन्मान करना मेरा कर्तव्य है, पद्म को आश्वस्त करना प्रयोजनीय है। ऐसा सोचकर जिस प्रकार विक्षुब्ध समुद्र के शान्त होने पर तरंगें लौट आती हैं उसी प्रकार मुनि स्व-उच्चता को क्रमशः कम करते-करते पूर्व रूप में लौट आए। संघ के

अनुरोध पर मुनि ने नमूची को मुक्त कर दिया। चक्रवर्ती ने नमूची को पदच्युत कर देश निकाला दे दिया। उसी समय से त्रिपाद भूमि चाहने वाले महामुनि विष्णुकुमार त्रिविक्रम नाम से विख्यात हुए। संघ का कार्य कर प्रायश्चित द्वारा चारित्र की उन्होंने शुद्धि की और विशुद्ध आराधना से केवल-ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को गए।

महापद्म ने भी संसार भय से भयभीत होकर राज्य को तृणवत् परित्याग कर सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होंने ५०० वर्ष युवराज रूप में, ५०० वर्ष शासक रूप में, ३०० वर्ष दिग्विजय में १८७०० वर्ष चक्रवर्ती रूप में और १० हजार वर्ष व्रती रूप में बिताया, महापद्म की इस प्रकार कुल आयु ३० हजार वर्ष की थी। कठिन तपश्चर्या और विभिन्न प्रकार के व्रतों का पालन कर घाती कर्मों को क्षय किया एवं केवल-ज्ञान प्राप्त किया।

इस पर्व में दो, जो तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी, दो जिन, दो चक्रवर्ती, दो राम, और दो वासुदेव व दो प्रतिवासुदेव का चरित्र वर्णन किया गया है। इन चौदह शलाका पुरुषों का यश दिशाओं में परिव्याप्त है—उनके उन्नत चरित्र की गाथा विश्वजनों के कर्ण कुहरों में आतिथ्य ग्रहण करे।

अष्टम सर्ग समाप्त

षष्ठ पर्व समाप्त

संकलन

॥ मुक्ति क्या है? ॥

मुक्ति क्या है? मोह और क्षोभ, राग और द्वेष से मुक्त होना ही मुक्ति है। मुक्ति स्थान विशेष में नहीं, स्थिति विशेष में है। आत्मा का स्व-स्थिति में, स्व-स्वरूप में पूर्णरूपेण स्थित होना, हर क्षण स्व-भाव में स्थित रहना ही मुक्ति है।

मोह और क्षोभ अर्थात् राग और द्वेष आत्मा का स्वभाव नहीं, विभाव है और विभाव को ही अपना समझकर उसमें रत रहना, यही संसार है। श्रमण भगवान् महावीर के शब्दों में राग-द्वेष, ये दो ही कर्म के बीज हैं, संसार के मूल हैं। जब तक पर-पदार्थ पर—यदि वे मन के अनुकूल हैं तो मोह—राग और मन के प्रतिकूल होने पर क्षोभ—द्वेष बना रहेगा, तब तक संसार में परिभ्रमण चालू रहेगा।

पदार्थ पदार्थ के स्थान पर रहेंगे। उनमें परिवर्तन तो होता रहा है और होता रहेगा, परन्तु मूलतः उनके अस्तित्व का नाश नहीं होता है। संसार तो अनन्त काल से चला आ रहा है और अनन्त-अनन्त काल तक निरन्तर विद्यमान रहेगा। हमें क्षय करना है—मोह-क्षोभ का; राग-द्वेष का। इनका क्षय हुआ कि आत्मा की संसार परिभ्रमण की धारा समाप्त हो जाएगी। अतः आध्यात्मिक भाषा में—राग-द्वेष से मुक्त होना, सदा वीतराग भाव में स्थित रहना ही मुक्ति है।

—उपाध्याय श्री अमरमुनि

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अनेकान्त || जुलाई-सितम्बर १९९०

इस अंक में है 'तत्वार्थवार्तिक में प्रयुक्त ग्रंथ' (डॉ. रमेशचन्द्र जैन), 'कर्नाटक में जैन धर्म' (राजमल जैन), 'केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालियर में सुरक्षित सहस्र जिनबिम्ब प्रतिमाएँ' (नरेश कुमार पाठक), 'अचर्चित भक्त कवि : हितकर और बालकृष्ण' (गंगाराम गर्ग), 'तीर्थराज सम्मेद शिखर—इतिहास के आलोक में' (डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल), 'देवगढ़ पुरातत्व की संभाल में औचित्य' (कुन्दनलाल जैन), 'आचार्य जिनसेन की काव्यकला' (एम. एल. जैन), 'कुन्दकुन्द की प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज' (डॉ. ऋषभचन्द्र जैन फौजदार)।

जैन सिद्धान्त भास्कर || जून-दिसम्बर १९९१

इस अंक में है 'जैन परम्परा में मांगलिक स्वप्न और खजुराहो के जैन मन्दिरों में उनका शिल्पांकन' (डॉ. मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी), 'योग परम्परा में आचार्य हरिभद्र का योगदान' (डॉ. कु. अरुणा आनन्द), 'आचार्य हरिभद्र द्वारा उल्लिखित बिहार के कुछ महत्वपूर्ण स्थान' (डॉ. राजाराम जैन), 'सिद्धक्षेत्र चूलगिरि बावनगजा : ऐतिहासिक आलोक में' (डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल), 'जैन दर्शन में मन की अवधारणा' (राजीव प्रचंडिया), 'The Concept of Pramana in Jainism : An Introduction' (Narendra Kumar Dash), 'Samiti and its Importance in Life' (Dr. M. S. Prachandia), 'Bawangaja Tallest Statue in the World' (M. M. Merma).

शोधादर्श || जून १९९१

इस अंक में है 'भारतवर्ष का एक प्राचीन जैन विश्वविद्यालय' (डॉ. ज्योति प्रसाद जैन), 'सुप्रतिष्ठ निर्वाण क्षेत्र गोपाचल' (रामजीत जैन), 'राजा भोज का भोजपुर मन्दिर' (अभय प्रकाश जैन), 'राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द' (अजित प्रसाद जैन), 'तीर्थंकर पार्श्वनाथ : एक ऐतिहासिक अध्ययन' (डॉ. विनोद कुमार तिवारी), 'कुन्दकुन्दाचार्य बनाम ककून्दाचार्य' (कुन्दनलाल जैन), 'जिन शासन और सामाजिक न्याय' (डॉ. शशिकान्त)।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१. अतिमुक्त (२य संस्करण)—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — ८.००

२. श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — ३.००

३. नीलांजना—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — १२.००

४. चन्दन मूर्त्ति—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — २०.००

५. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया — ५.००

६. भगवान महावीर (एलबम्) — १०.००

বাংলা

১. অতিমুক্ত —শ্রীগণেশ লালওয়ানী — ৪.০০

২. শ্রমণ সংস্কৃতির কবিতা —শ্রীগণেশ লালওয়ানী — ৩.০০

৩. ভগবান মহাবীর ও জৈন ধর্ম —শ্রীপূরণচাঁদ শ্যামসুখা — ২.০০

English

1. Bhagavati Sutra (Text with English Translation)
—Sri K. C. Lalwani
   - Vol. I (Satak 1-2) — 40.00
   - Vol. II (Satak 3-6) — 40.00
   - Vol. III (Satak 7-8) — 50.00
   - Vol. IV (Satak 9-11) — 70.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess — 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani — 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani — 1.50

5 Verses from Cidananda—tr. by Sri Ganesh Lalwani — 5.00

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253
Vol. XV No. 8 TITTHAYARA December 1991
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73